

मालवा में जैनधर्म : ऐतिहासिक विकास

डॉ० तेजसिंह गौड़, एम.ए., पी-एच.डी.

भारतीय इतिहास में मालवा का अपना एक विशिष्ट स्थान है। भारत के इस नाभिस्थल पर प्राचीनकाल से ही यहाँ के सभी प्रमुख धर्म पल्लवित होते रहे हैं। जहाँ तक जैनधर्म का प्रश्न है, सर्वप्रथम मालवा में जैनधर्म के अस्तित्व का दिगम्बर परम्परा से पता चलता है कि भगवान महावीर स्वामी अपने साधनामय जीवन में उज्जैन पधारे थे। वे उज्जयिनी के अतिमुक्तक नामक इमशान भूमि में आकर ध्यान मग्न हुए थे, उस समय रुद्र नामक व्यक्ति ने उन पर घोर उपसर्ग किया था, परन्तु वह अपने ध्यान में दृढ़ और निश्चल बने रहे। रुद्र की रौद्रता उनको तपस्या से विचलित न कर सकी।^१ त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित में चण्डप्रद्योत, जो कि अवन्ति नरेश था, के जैनधर्मावलम्बी होने का विवरण मिलता है। विवरण संक्षेप में इस प्रकार है कि सिन्धु सौवीर के राजा उदायी के पास जीवंत स्वामी की प्रतिमा थी। किसी प्रकार वह प्रतिमा चण्डप्रद्योत ने हस्तगत कर ली। इसी से उदायी ने चण्डप्रद्योत पर आक्रमण कर उसे बन्दी बना लिया। दशपुर में चातुर्मास हुआ और यहीं जीवंतस्वामी की प्रतिमा की प्रतिष्ठा कर एक भव्य मन्दिर का निर्माण कराया गया लेकिन इस युग के अभी तक कोई पुरातात्विक अवशेष प्राप्त नहीं होते हैं।

मौर्यकालीन मालवा में जैनधर्म—सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वे अंतिम समय में जैनसाधु होकर दक्षिण चले गये थे। दक्षिण भारत की श्रमणबेलगोला की गुफा में जैनधर्म सम्बन्धी शिलालेख प्राप्त हुए हैं। इनमें 'चन्द्रगुप्त' नामक राजा का उल्लेख आता है जिसका सम्बन्ध विद्वानों ने चन्द्रगुप्त मौर्य से स्थापित किया है। चन्द्रगुप्त ने जैनधर्म में दीक्षा ली, इसका उल्लेख भद्रबाहु चरित, आराधना कथाकोश, पुण्यास्रव कथाकोश आदि ग्रन्थों में पाया जाता है। द्वादश वर्षीय दुर्भिक्ष तथा मुनियों के दक्षिण जाने की कथा अन्यान्य ऐतिहासिक तथ्यों से प्रामाणिक सिद्ध होती है।^२ तब यह भी प्रमाणित हो जाता है कि इस समय मालवा में जैनधर्म अच्छी अवस्था में था तथा निरन्तर उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा था।

१ उत्तरपुराण ३३१।७४

२ The Age of Imperial Unity, Vol. II, page 417.

अशोक की मृत्यु के उपरान्त मौर्य साम्राज्य दो भागों में बँट गया था।^१ पूर्वी राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र थी और वहाँ दशरथ राज कर रहा था। पश्चिमी राज्य की राजधानी उज्जयिनी थी और वहाँ सम्प्रति का राज्य था।^२ सम्प्रति का जैन साहित्य में बहुत ऊँचा स्थान है। जैन अनुश्रुति के अनुसार सम्राट् सम्प्रति जैनधर्म का अनुयायी था और उसने अपने प्रियधर्म को फँलाने के लिये बहुत प्रयत्न किया था। परिशिष्ट पर्व में लिखा है कि रात्रि के समय सम्प्रति को यह विचार उत्पन्न हुआ कि अनार्य देशों में भी जैनधर्म का प्रचार हो और जैनसाधु स्वच्छन्द रीति से विचर सकें। इसके लिये उसने इन देशों में जैनसाधुओं को धर्म प्रचार के लिये भेजा। साधुओं ने राजकीय प्रभाव से शीघ्र ही जनता को जैनधर्म और आचार का अनुगामी बना लिया। इस कार्य के लिये सम्प्रति ने अनेक लोकोपकारी कार्य भी किये। गरीबों को भोजन बाँटने के लिये अनेक दानशालाएँ खुलवाईं। अनेक जैन ग्रन्थों में लिखा है कि धर्म-प्रचार के लिये सम्प्रति ने अपनी सेना के योद्धाओं को साधुओं का वेश बनाकर प्रचार के लिये भेजा था।^३ इस युग के उल्लेखनीय आचार्यों में आचार्य भद्रबाहु एवं आर्य सुहस्तिसूरि का नाम लिया जा सकता है। भद्रबाहु द्वारा रचित आगमिक साहित्य इस युग की विशेष देन है।

शक कुषाण युगोन मालवा में जैनधर्म—इस समय भी मालवा में जैनधर्म पर्याप्त उन्नतावस्था में था। इसका आभास हमें आचार्य कालक के कथानक से मिलता है। आचार्य कालक ने शकों को अवंती पर आक्रमण करने के लिये आमंत्रित किया था जिसका एकमात्र कारण यह था कि अवंतीनरेश गर्दभिल्ल ने आचार्य कालक की भगिनी जैनसाध्वी सरस्वती का बलात् अपहरण कर लिया था। सभी प्रयत्नों के बावजूद जब गर्दभिल्ल ने सरस्वती को मुक्त नहीं किया तो बाध्य होकर आचार्य कालक ने शकों को आमंत्रित किया कि वे गर्दभिल्ल के दर्प को चूर्ण कर दे। युद्धोपरांत मालवा में शकों का राज्य स्थापित हो गया था।

इस घटना में जनता का भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कालकाचार्य को सहयोग रहा ही होगा। इससे यह भी सिद्ध होता है कि इस काल में जैनधर्म की स्थिति उत्तम रही होगी। क्षपणक विक्रम के नवरत्नों में से एक थे। इनके रचे हुए न्यायावतार, दर्शनशुद्धि, सन्मतितर्कसूत्र, और प्रमेयरत्नकोष नामक चार ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

इस युग में अनेक युगप्रधान आचार्य भी हो चुके हैं जिनमें भद्रगुप्ताचार्य,

१ Asoka : V. A. Smith, page 70.

२ मौर्य साम्राज्य का इतिहास, पृष्ठ ६५३

३ (क) The Age of Imperial Unity, page 418

(ख) मौर्य साम्राज्य का इतिहास, पृष्ठ ६४८-४९

आर्य वज्र, तथा आर्यरक्षितसूरि के नाम गिनाये जा सकते हैं। आगम साहित्य को आर्यरक्षितसूरि ने चार भागों में विभक्त करके जैनधर्म की दृष्टि से इस युग के ऐतिहासिक महत्व को और भी बढ़ा दिया है। आर्यरक्षितसूरि का आगम साहित्य का विभाजन^१ इस प्रकार है—

- | | |
|------------------|------------------|
| (१) करणचरणानुयोग | (२) गणितानुयोग |
| (३) धर्मकथानुयोग | (४) द्रव्यानुयोग |

इसके साथ ही आचार्य आर्यरक्षितसूरि ने अनुयोगद्वारा सूत्र की भी रचना की जो जैनदर्शन का प्रतिपादक महत्त्वपूर्ण आगम माना जाता है। यह आगम आचार्यप्रवर की दिव्यतम दार्शनिक दृष्टि का परिचायक है।^२

गुप्तकालीन मालवा में जैनधर्म—भारतीय इतिहास में गुप्तकाल स्वर्णयुग के नाम से चिर-परिचित है। यह युग सर्वांगीण विकास का था। गुप्त राजा वैष्णव धर्म के अनुयायी थे। चन्द्रगुप्त द्वितीय, कुमारगुप्त प्रथम और स्कन्दगुप्त तीनों के सिक्कों पर 'परम भागवत' खुदा होना गुप्तों की उस धर्म में विशेष निष्ठा सूचित करता है।^३ किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि अन्य धर्मों की स्थिति नगण्य थी अथवा कि राजा दूसरे धर्मों का आदर नहीं करते थे। गुप्त राजा सभी धर्मों को समान आदर की दृष्टि से देखते थे। इसका प्रमाण यह है कि इस काल में लगभग सभी धर्मों के अच्छी स्थिति में होने के प्रमाण उपलब्ध होते हैं।

मालवा में जैनधर्म के लिये यह युग अपना विशेष महत्त्व रखता है, क्योंकि इसी युग में जैनधर्म से सम्बन्धित पुरातात्विक सामग्री मिलना प्रारम्भ होती है। इतिहास प्रसिद्ध नगर विदिशा के पास उदयगिरि की पहाड़ी में बीस गुफाएँ हैं, जो इसी युग की हैं। इनमें से क्रम से प्रथम एवं बीसवें नम्बर की गुफाएँ जैनधर्म से सम्बन्धित हैं। पहले नम्बर की गुफा में एक लेख खुदा हुआ है जिससे सिद्ध होता है कि यह गुफा गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल की है।^४ बीसवें नम्बर की गुफा में भी एक पद्यात्मक लेख खुदा हुआ है जिसके अनुसार इस मूर्ति की प्रतिष्ठा गुप्त सम्वत् १०६ (ईस्वी सन् ४२६ कुमारगुप्त का काल) में कार्तिक कृष्णा पंचमी को आचार्य भद्रान्वयी आचार्य गोशर्म मुनि के शिष्य शंकर द्वारा की गई थी। इस शंकर ने अपना जन्म स्थान उत्तर भारतवर्ती कुरुदेश बतलाया है।^५ लेख का हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है—

- १ श्रीमद् राजेन्द्रसूरि स्मारक ग्रन्थ पृष्ठ ४५६
- २ वही, पृष्ठ ४५६
- ३ गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, पृष्ठ ३२१
- ४ भारतीय संस्कृति के जैनधर्म का योगदान, पृष्ठ ३११
- ५ वही, पृष्ठ ३११

“सिद्धों को नमस्कार ! श्री संयुक्त गुण समुद्रगुप्तान्वय के श्रेष्ठ राजाओं के वर्द्धमान राज्य शासन के १०६वें वर्ष और कार्तिक महिने की कृष्णा पंचमी के दिन गुहा द्वार में विस्तृत सर्पफण से युक्त शत्रुओंको जीतने वाले जिनश्रेष्ठ पार्श्वनाथ जिनकी मूर्ति शम-दमवान शंकर ने बनवाई जो आचार्य भद्र के अन्वय का भूषण और आर्य कुलोत्पन्न गोशर्म मुनि का शिष्य तथा दूसरों द्वारा अजेय रिपुघ्न मानी अश्वपति भट्ट संघिल और पद्मावती के पुत्र शंकर इस नाम से लोक में विश्रुत तथा शास्त्रोक्त यतिमार्ग में स्थित था और वह उत्तर कुरुवों के सदृश उत्तर दिशा के श्रेष्ठ देश में उत्पन्न हुआ था, उसके इस पावन कार्य में जो पुण्य हुआ हो वह सब कर्मरूपी शत्रु समूह के क्षय के लिये हो।” अभिलेख में वर्णित आचार्य भद्र और उनके अन्वय के प्रसिद्ध मुनि गोशर्म के विषय में अभी कुछ भी ज्ञात नहीं है फिर भी इतना इनके विषय में निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ये युगप्रधान आचार्य थे।

इस युग की जैनधर्म सम्बन्धी एक महत्वपूर्ण उपलब्धि अभी हाल में ही हुई है। प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी ने अपने एक लेख “राम गुप्त के शिलालेखों की प्राप्ति”^१ में विदिशा के समीप बेसनदी के तटवर्ती एक टीले की खुदाई करते समय प्राप्त गुप्तकालीन जैन तीर्थंकरों की दुर्लभ तीन प्रतिमाओं पर प्रकाश डाला है। ये तीनों प्रतिमाएँ बलुए पत्थर की बनी हैं। इन तीनों प्रतिमाओं की चरण चौकियों पर गुप्तकालीन ब्राह्मी लिपि तथा संस्कृत भाषा में लेख उत्कीर्ण थे। एक मूर्ति का लेख तो पूर्णतः नष्ट हो चुका है। दूसरी मूर्ति का लेख आधा बचा है और तीसरी मूर्ति का लेख पूरा सुरक्षित है। इसके आधार पर प्रो० वाजपेयी ने गुप्तकालीन एक विवादास्पद समस्या पर नवीन प्रकाश डाला है। समस्या गुप्तनरेश रामगुप्त की ऐतिहासिकता की है। इस नरेश का उल्लेख साहित्य में तो मिलता है तथा इसके ताँबे के सिक्के भी बड़ी संख्या में उपलब्ध होते हैं। स्वयं प्रो० वाजपेयी ने इस नरेश के सिक्कों पर विस्तार से प्रकाश डाला है, किन्तु अभी तक कोई भी ऐसा अभिलेख प्राप्त नहीं था जिसमें कि रामगुप्त को गुप्तनरेश के रूप में वर्णित किया गया हो। इन मूर्तियों के अभिलेखों के आधार पर इन मूर्तियों का निर्माण “महाराजाधिराज श्री रामगुप्त के शासनकाल” में हुआ। इन प्रतिमाओं के सम्बन्ध में प्रो० वाजपेयी ने लिखा है कि एक प्रतिमा पर आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ का और दूसरी पर नवें तीर्थंकर पुष्पदन्त का नाम लिखा है। मूर्तियों की निर्माण शैली ईस्वी चौथी शती के अंतिम चतुर्थांश की कही जा सकती है। इन मूर्तियों में कुषाणकालीन तथा ईस्वी पाँचवीं शती की गुप्तकालीन मूर्तिकला के बीच के युग के लक्षण दृष्टव्य है। मथुरा आदि से प्राप्त कुषाणकालीन बौद्ध और तीर्थंकर प्रतिमाओं की चरण चौकियों पर सिंहीं जैसा अंकन प्राप्त होता है वैसे इन मूर्तियों पर लक्षित है। प्रतिमाओं का अंग विन्यास तथा सिरों के पीछे अवशिष्ट

प्रभामण्डल भी अंतरिमकाल के लक्षणों से युक्त है। इसमें उत्तर गुप्तकालीन अलंकरण का अभाव है।

लिपिविज्ञान की दृष्टि से भी ये प्रतिमा लेख ईस्वी चौथी शती के ठहरते हैं। इन लेखों की लिपि गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के उन लेखों से मिलती है जो सांची और उदयगिरि की गुफाओं में मिले हैं।

इन तीर्थंकर प्रतिमाओं के आधार पर प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी ने विवादास्पद गुप्त नरेश रामगुप्त पर पर्याप्त प्रकाश डालकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि समुद्रगुप्त के पश्चात् रामगुप्त सम्राट् हुआ था। किन्तु अभी इस मत को मान्यता नहीं मिली है साथ ही अभी यह भी निराकरण होना शेष है कि इन प्रतिमाओं के लेखों में उल्लिखित वही रामगुप्त है अथवा कोई अन्य।

इसके अतिरिक्त इस काल की एक और दूसरी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है जैनाचार्य सिद्धसेन दिवाकर। जैनग्रन्थों में इन्हें साहित्यिक एवं काव्यकार के अतिरिक्त नैयायिक और तर्कशास्त्रियों में प्रमुख माना है। सिद्धसेन दिवाकर का जैन इतिहास में बहुत ऊँचा स्थान है। श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही सम्प्रदाय उनके प्रति एक ही भाव से श्रद्धा रखते हैं। किंवदन्ती है कि एक बार राजा चन्द्रगुप्त ने इनसे कल्याण मंदिर स्तोत्र का पाठ करने का आग्रह किया। राजा के आग्रह पर इन्होंने कल्याण मंदिर स्तोत्र का पाठ किया। पाठ समाप्त होते ही उज्जयिनी के महाकाल मंदिर में शिवलिंग फट गया और उसके मध्य से पार्श्वनाथ की मूर्ति निकल आई।^१

पं० सुखलालजी^२ ने सिद्धसेन दिवाकर के विषय में इस प्रकार लिखा है, “जहाँ तक मैं जान पाया हूँ, जैन परम्परा में तर्कविद्या के, और तर्कप्रधान संस्कृत वाङ्मय के आदि प्रणेता हैं सिद्धसेन दिवाकर।”

सिद्धसेन का सम्बन्ध उनके जीवन कथानकों के अनुसार उज्जयिनी और उसके अधिपति विक्रम के साथ अवश्य रहा है, पर यह विक्रम कौनसा है? यह एक विचारणीय प्रश्न है। अभी तक के निश्चित प्रमाणों से जो सिद्धसेन का समय विक्रम की पांचवीं और छठी शताब्दी का मध्य जान पड़ता है, उसे देखते हुए अधिक सम्भव यह है कि वह राजा चन्द्रगुप्त द्वितीय या उसका पौत्र स्कन्दगुप्त रहा होगा। जो विक्रमादित्य रूप से प्रसिद्ध हुए। सभी नये-पुराने उल्लेख यह कहते हैं कि सिद्धसेन जन्म से ब्राह्मण थे।

सिद्धसेन ने गद्य में कुछ लिखा हो तो पता नहीं है। उन्होंने संस्कृत में बत्तीसियाँ रची हैं, जिनमें से इक्कीस अभी लभ्य हैं। उनका प्राकृत में रचा ‘सन्मतिप्रकरण’ जैनदृष्टि और मन्तव्यों को तर्क शैली से स्पष्ट करने तथा स्थापित करने वाला जैन

१ संस्कृति केन्द्र उज्जयिनी, पृष्ठ ११७

२ स्व० बाबू श्री बहादुरसिंह जी सिधी स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ १०, ११, १२

वाङ्मय में सर्वप्रथम ग्रन्थ है जिसका आश्रय उत्तरवर्ती सभी श्वेताम्बर-दिगम्बर विद्वानों ने लिया है। सिद्धसेन ही जैन-परम्परा का आद्य संस्कृत स्तुतिकार है।^१ सिद्धसेन दिवाकर ने तत्त्वार्थाधिगमसूत्र की टीका भी बड़ी विद्वत्ता से लिखी है। इस ग्रन्थ के मूल लेखक को दिगम्बर सम्प्रदाय वाले उमास्वामि और श्वेताम्बर सम्प्रदाय वाले उमास्वाति बतलाते हैं।^२ सिद्धसेन का कल्याणमंदिर स्तोत्र ४४ श्लोकों में है। यह पार्श्वनाथ भगवान का स्तोत्र है। इसकी कविता में प्रसाद गुण कम है और कृत्रिमता एवं श्लेष की भरमार है परन्तु प्रतिभा की कमी नहीं है। इसकी महत्ता का पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है। इसके अंतिम भिन्न छन्द के एक पद्य में इसके कर्त्ता का नाम कुमुदचन्द्र सूचित किया गया है; जिसे कुछ लोग सिद्धसेन का ही दूसरा नाम मानते हैं। दूसरे पद्य के अनुसार यह २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की स्तुति में रचा गया है। भक्तामर के सदृश होते हुए भी यह अपनी काव्य कल्पनाओं व शब्द योजना में मौलिक ही है। हे जिनेन्द्र ! आप उन भक्तों को संसार से कैसे पार कर देते हैं, जो अपने हृदय में आपका नाम धारण करते हैं ? हाँ जाना, जो एक मशक भी जल में तैर कर निकल जाती है, वह उसके भीतर भरे हुए पवन का ही तो प्रभाव है। हे जिनेश ! आपके ध्यान से भव्य पुरुष क्षणमात्र में देह को छोड़कर परमात्म दशा को प्राप्त हो जाते हैं, क्यों न हो ? तीव्र अग्नि के प्रभाव से नाना धातुएँ अपने पाषाण भाव को छोड़कर शुद्धसुवर्णत्व को प्राप्त कर लेती है।^३ सिद्धसेन दिवाकर द्वारा रचित वर्द्धमान-द्वात्रिंशिका दूसरा स्तोत्र है। यह ३२ श्लोकों में भगवान वर्द्धमान महावीर की स्तुति है। इसमें कृत्रिमता एवं श्लेष नहीं है। प्रसाद गुण अधिक है। भगवान महावीर को शिव, बुद्ध, हृषीकेश, विष्णु एवं जगन्नाथ मानकर प्रार्थना की गई है।^४ इन दोनों स्तोत्रों में सिद्धसेन दिवाकर की काव्यकला ऊँची श्रेणी की है।

राजपूतकालीन मालवा में जैनधर्म—यदि गुप्तकाल भारतीय इतिहास का स्वर्णकाल है, तो राजपूतकाल मालवा में जैनधर्म के विकास तथा समृद्धि के दृष्टिकोण से स्वर्णकाल रहा है। इस युग में कई जैन मंदिरों का निर्माण हुआ। इसके प्रारम्भिक काल में बदनावर में जैनमंदिर विद्यमान थे। इसका विवरण डॉ० हीरालाल जैन^५ इस प्रकार देते हैं कि जैन हरिवंशपुराण की प्रशस्ति में इसके कर्त्ता जिनसेनाचार्य ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि शक संवत् ७०५ (ईस्वी सन् ७८३) में उन्होंने वर्द्धमानपुर के पार्श्वालय (पार्श्वनाथ के मंदिर) की अन्नराजवसति में बैठकर हरिवंशपुराण की रचना की और उसका जो भाग शेष रहा उसे वहीं के शांतिनाथ मंदिर में बैठकर पूरा

१ The Jain Sources of the History of Ancient India, page 150-51

२ संस्कृति केन्द्र उज्जयिनी, पृष्ठ ११६

३ भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, पृष्ठ १२५-२६

४ संस्कृति केन्द्र उज्जयिनी

५ भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, पृष्ठ ३३२-३३३

किया। उस समय उत्तर में 'इन्द्रायुध', दक्षिण में कृष्ण के पुत्र श्री वल्लभ व पश्चिम में वत्सराज तथा सौरमंडल में वीरवराह नामक राआओं का राज्य था। यह वर्धमानपुर सौराष्ट्र का वर्तमान बड़वाण माना जाता है। किन्तु मैंने अपने लेख में सिद्ध किया है कि हरिवंशपुराण में उल्लिखित वर्धमानपुर मध्यप्रदेश के धार जिले में बदनावर है जिससे १० मील की दूरी पर दोस्तरिका होना चाहिए; जहाँ की प्रजा ने जिनसेन के उल्लेखानुसार उस शांतिनाथ मंदिर में विशेष पूजा-अर्चा का उत्सव किया था। इस प्रकार वर्धमानपुर में आठवीं शती में पार्श्वनाथ और शांतिनाथ के दो जैन मंदिरों का होना सिद्ध होता है। शांतिनाथ मंदिर ४०० वर्ष तक विद्यमान रहा। इसके प्रमाण हमें बदनावर से प्राप्त अच्छुप्तादेवी की मूर्ति पर के लेख में प्राप्त होते हैं, क्योंकि उसमें कहा गया है कि संवत् १२२९ (ई० सन् ११७२) की वैशाख कृष्णा पंचमी को वह मूर्ति वर्धमानपुर के शांतिनाथ चैत्यालय में स्थापित की गई।

विदिशा क्षेत्र में भी जैनधर्म इस युग में उन्नतावस्था में था जिसका प्रमाण है वहाँ उपलब्ध जैनमंदिर व मूर्तियाँ। ग्यारसपुर नामक स्थान पर जैन मंदिर के भग्नावशेष मिले हैं। मालवा में जैन मंदिरों के जितने भग्नावशेष मिले हैं, उनमें प्राचीनतम अवशेष यहीं पर है जो विन्यास एवं स्तम्भों की रचना शैली में खजुराहो के समान है। फर्गुसन ने इनका निर्माणकाल १०वीं सदी के मध्य निर्धारित किया है।^१ इस काल के और भी अनेक अवशेष इस क्षेत्र में मिले हैं। साथ ही यदि इन सब अवशेषों का विधिवत संकलन एवं अध्ययन किया जाय तो जैन वास्तुकला के एक दीर्घरिक्त स्थान की पूर्ति हो सकती है।^२

राजपूतकालीन खजुराहो शैली के कुछ जैन मंदिर खरगोन जिले के 'ऊन' नामक स्थान में मिले हैं। इन मंदिरों की उपलब्धि से यह प्रमाणित हो जाता है कि इस समय इस क्षेत्र में जैनधर्म अपनी उन्नति के शिखर पर था। ऊन में वैसे (१) हिन्दू और (२) जैन मंदिरों के दो समूह प्राप्त हुए हैं। जो कला की दृष्टि से अपना विशेष महत्त्व रखते हैं। यहाँ बहुत बड़ी मात्रा में जैन मूर्तियाँ भी मिली हैं जिन पर वि० सं० ११८२ या ११९२ के लेख अंकित हैं जिससे यह विदित होता है कि यह मूर्ति आचार्य रत्नकीर्ति द्वारा निर्मित की गई थी।^३ यहाँ के मंदिर पूर्णतः पाषाण खण्डों से निर्मित हैं, चिपटी छत व गर्भगृह, सभामंडपयुक्त तथा प्रदक्षिणापथ रहित हैं जिससे इनकी प्राचीनता सिद्ध होती है। भित्तियों और स्तम्भों पर सर्वांग उत्कीर्णन है, जो खजुराहो की कला से समानता रखता है।^४

११वीं सदी के जैन मंदिरों के कुछ अवशेष नरसिंहगढ़ जिला राजगढ़ (ब्यावरा)

१ History of Indian and Eastern Architecture, Vol. II, page 55.

२ वही, पृ० ५५

३ Progress Report of Archaeological Survey of India, W. C. 1919, page 61.

४ भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, पृष्ठ ३३९

से ७ मील दक्षिण में बिहार नामक स्थान पर भी उपलब्ध हुए हैं। यहाँ जैन मंदिरों के साथ ही हिन्दू, बौद्ध व इस्लाम धर्म के अवशेष भी मिले हैं।^१ इसके अतिरिक्त डॉ० एच० व्ही० त्रिवेदी ने निम्नांकित स्थानों पर राजपूतकालीन जैन मंदिर के प्राप्ति की सूचना दी है :—

(१) बीजवाड़ा जिला देवास, (२) बीथला जिला गुना, (३) बोरी जिला झाबुआ, (४) छपेस जिला राजगढ़ (ब्यावरा) (५) गुरिला का पहाड़ जिला गुना (६) कड़ोद जिला धार (७) पुरा गुलाना जिला मंदसौर एवं (८) बईखेड़ा जिला मंदसौर। बईखेड़ा श्वेताम्बर मतावलम्बियों का तीर्थस्थान भी है। यहाँ चित्तौड़ की चौबीसी के मुख्य मंदिर के द्वार स्तम्भों की कला से मिलती-जुलती कला विद्यमान है। चित्तौड़ की चौबीसी मुख्य मंदिर का काल १०वीं-११वीं शताब्दी है और यही समय यहाँ के द्वार स्तम्भों का भी है। “बईपारसनाथ” तीर्थ के सम्बन्ध में किंवदन्ती है कि यहाँ जो प्रतिमा है वह पहले एक बिम्ब में थी। एक सेठ की गाय जंगल में चरने के लिये जाती थी। उस गाय का दूध प्रतिमा पी लेती थी। सेठ व उसके परिवार वाले आश्चर्य करते थे कि गाय का दूध कहाँ जाता है? एक बार सेठ को स्वप्न हुआ कि मेरा (पार्श्वनाथ का) मंदिर बनवाकर प्रतिष्ठा करवाओ। इस पर उस सेठ ने बईखेड़ा ग्राम में उक्त मंदिर बनवाया और बड़ी धूमधाम से प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवाई। यहाँ के मंदिर का सभामण्डप चित्रांकित है। इस काल में इतने मंदिरों की प्राप्ति ही इस बात को प्रमाणित कर देती है कि जैनधर्म इस समय में अपनी श्रेष्ठ स्थिति में रहा होगा। धार में भी इस समय के अनेक मंदिरों का उल्लेख मिलता है।

जिस प्रकार इस युग में अनेक जैन मंदिरों के निर्माण के उल्लेख के साथ ही साथ उनके अवशेष मिलते हैं, ठीक उसी प्रकार इस युग में अनेक जैन विद्वान भी हो चुके हैं जिन्होंने अपनी विद्वत्ता से राजपूत काल के गौरव को बढ़ाया है उनमें से प्रमुख जैनाचार्यों एवं विद्वानों का परिचय उनके द्वारा लिखे गये ग्रन्थों सहित निम्नानुसार दिया जा सकता है—

(१) जिनसेन—ये पुत्राट संघ की आचार्य परम्परा में हुए। ये आदिपुराण के कर्त्ता, श्रावक धर्म के अनुयायी एवं पंचस्तूपान्वय के जिनसेन से भिन्न हैं। ये कीर्तिषेण के शिष्य थे।

इनका “हरिवंश” इतिहास प्रधान चरित काव्य श्रेणी का ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की रचना वर्धमानपुर वर्तमान बदनावर जिला धार में की गई थी। दिगम्बर सम्प्रदाय के कथासंग्रहों में इसका स्थान तीसरा है।

(२) हरिषेण—पुत्राट संघ के अनुयायियों में एक-दूसरे आचार्य हरिषेण हुए हैं,

१ Bibliography of Madhya Bharat, Part I, page 7.

उनकी गुरु-परम्परा मौनी भट्टारक श्री हरिषेण, भरतसेन, हरिषेण इस प्रकार बैठती है। आपने कथाकोष की रचना वर्धमानपुर या बड़वाण-बदनावर में विनायक पाल राजा के राज्यकाल में की थी। विनायकपाल प्रतिहार वंश का राजा था, जिसकी राजधानी कन्नौज थी। इसका ६८८ वि० सं० का एक दान पत्र मिला है। इसके एक वर्ष पश्चात् अर्थात् ६८९ शक संवत् ८५३ में कथाकोष की रचना हुई। हरिषेण का कथाकोष साढ़े बारह हजार श्लोक परिमाण का बृहद् ग्रन्थ है।

(३) मानतुंग—इनके जीवन के सम्बन्ध में अनेक विरोधी विचारधारार्य हैं। इनका समय ७वीं या ८वीं सदी के लगभग माना जाता है।

इन्होंने भक्तामर स्तोत्र का प्रणयन किया जिसका श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों ही सम्प्रदाय वाले समान रूप से आदर करते हैं। कवि की यह रचना इतनी लोकप्रिय रही कि इसके प्रत्येक अन्तिम चरण को लेकर समस्या पूर्यात्मक स्तोत्र काव्य लिखे जाते रहे। इस स्तोत्र की कई समस्या पूतियाँ उपलब्ध हैं।

(४) आचार्य देवसेन—मार्गशीर्ष सुदि १० वि० सं० ६६० को धारा में निवास करते हुए पार्श्वनाथ के मन्दिर में 'दर्शनसार' नामक ग्रन्थ समाप्त किया। इन्होंने 'आराधना सार' और 'तत्त्वसार' नामक ग्रन्थ भी लिखे। 'आलाप पद्धति' 'नयचक्र' आदि रचनायें आपने धारा में ही लिखीं अथवा अन्यत्र यह रचनाओं पर से ज्ञात नहीं होता।

(५) आचार्य महासेन—ये लाड़ बागड़ संघ के पूर्णचन्द्र थे। आचार्य जयसेन के प्रशिष्य और गुणाकरसेन सूरि के शिष्य थे। इन्होंने 'प्रद्युम्न चरित' की रचना ११वीं शताब्दी के मध्य में की। ये मुंज के दरबार में थे तथा मुंज द्वारा पूजित थे। न तो इनकी कृति में ही रचना काल दिया हुआ है और न ही अन्य रचनाओं की जानकारी मिलती है।

(६) अमितगति—ये माथुर संघ के आचार्य थे। माधवसेन सूरि के शिष्य थे। वाक्पतिराज मुंज की सभा के रत्न थे।

विविध विषयों पर आपके द्वारा लिखी गई कृतियाँ उपलब्ध हैं—

(क) सुभाषित रत्न संदोह की रचना वि० सं० ६६४ में हुई। इसमें ३२ परिच्छेद हैं, जिनमें प्रत्येक में साधारणतः एक ही छन्द का प्रयोग किया गया है। इसमें जैन नीतिशास्त्र के विभिन्न दृष्टिकोणों पर आपाततः विचार किया गया है; साथ-साथ ब्राह्मणों के विचारों और आचार के प्रति इसकी प्रवृत्ति विसंवादात्मक है। प्रचलित रीति के ढंग पर स्त्रियों पर खूब आक्षेप किये गये हैं। एक पूरा परिच्छेद २४ वेश्याओं के सम्बन्ध में है। जैनधर्म के आप्तों का वर्णन २८ वें परिच्छेद में किया गया है।

(ख) धर्म परीक्षा बीस साल अनन्तर लिखा गया है। इसमें भी ब्राह्मण धर्म पर आक्षेप किये गये हैं और इससे अधिक आख्यानमूलक साक्ष्य की सहायता ली गई है।

(ग) पंचसंग्रह—विक्रम सं० १०७३ में मसूतिकापुर वर्तमान मसूदबिलोदा में जो धारा के समीप है, बनाया गया था। (घ) उपासकाचार (च) आराधना सामायिक पाठ (छ) भावनाद्वात्रिशतिका (ज) योगसारप्राभृत। जो उपलब्ध नहीं हैं, वे ग्रन्थ हैं— (१) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति (२) चन्द्रप्रज्ञप्ति (३) सार्धद्वयद्वीपप्रज्ञप्ति (४) व्याख्या-प्रज्ञप्ति।

(७) माणिक्यनन्दी—ये धारा निवासी थे और वहाँ दर्शनशास्त्र का अध्ययन करते थे। इनकी एकमात्र रचना 'परीक्षामुख' नाम का एक न्यायसूत्र ग्रन्थ है जिसमें कुल २०७ सूत्र हैं। ये सूत्र सरल, सरस और गम्भीर अर्थ के द्योतक हैं।

(८) नयनन्दी—ये माणिक्यनन्दी के शिष्य थे। इनकी रचनायें—(१) सुदर्शन-चरित—एक खण्ड काव्य है, जो महाकाव्यों की श्रेणी में रखने योग्य है। (२) सकल-विहिविहाण—विशाल काव्य है। इसकी प्रशस्ति में इतिहास की महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की गई है। उसमें कवि ने ग्रन्थ बनाने के प्रेरक हरिसिंह मुनि का उल्लेख करते हुए अपने पूर्ववर्ती जैन, जनेतर और कुछ समसामयिक विद्वानों का भी उल्लेख किया है। समसामयिकों में श्रीचन्द्र, प्रभाचन्द्र और श्रीकुमार का उल्लेख किया है।

राजा भोज, हरिसिंह के नामों के साथ बच्छराज और प्रभुईश्वर का भी उल्लेख किया है। कवि ने वल्लभराज का भी उल्लेख किया है जिसने दुर्लभ प्रतिमाओं का निर्माण कराया था। यह ग्रंथ इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त महत्व का है। कवि के दोनों ग्रन्थ अपभ्रंश भाषा में हैं।

(९) प्रभाचन्द्र—माणिक्यनन्दी के विद्या-शिष्यों में प्रभाचन्द्र प्रमुख रहे। ये माणिक्यनन्दी के 'परीक्षामुख' नामक सूत्र ग्रन्थ के कुशल टीकाकार हैं। दर्शन-साहित्य के अतिरिक्त ये सिद्धान्त के भी विद्वान थे। आपको भोज के द्वारा प्रतिष्ठा मिली थी। आपने विशाल दार्शनिक ग्रन्थों के निर्माण के साथ-साथ अन्य अनेक ग्रंथों की भी रचना की। इनके ग्रंथ इस प्रकार हैं—

- (१) प्रमेयकमलमार्तण्ड—दर्शनग्रंथ है जो कि माणिक्यनन्दी के परीक्षामुख की टीका है। यह ग्रंथ राजा भोज के राज्यकाल में लिखा गया।
- (२) न्यायकुमुदचन्द्र—न्याय विषयक ग्रंथ है।
- (३) आराधना कथाकोश—गद्य ग्रंथ है।
- (४) पुष्पदंत के महापुराण पर टिप्पणी।
- (५) समाधितंत्र टीका (ये सब राजा जयसिंह के राज्यकाल में)।
- (६) प्रवचनसरोजभास्कर।
- (७) पंचास्तिकायप्रदीप
- (८) आत्मानुशासन तिलक।
- (९) क्रियाकलाप टीका।
- (१०) रत्नकरण्ड टीका।

(११) बृहत् स्वयंभूस्तोत्र टीका ।

(१२) शब्दाम्भोज टीका ।

ये सब ग्रंथ कब और किसके राज्यकाल में लिखे गये कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है । इन्होंने देवनन्दी की तत्त्वार्थवृत्ति के विषम पदों की एक विवरणात्मक टिप्पणी लिखी है । इनका समय ११वीं सदी का उत्तरार्द्ध एवं १२वीं सदी का पूर्वार्द्ध ठहरता है । इनके नाम से अष्टपाहुड पंजिका, मूलाचार टीका, आराधना टीका आदि ग्रंथों का भी उल्लेख मिलता है, जो उपलब्ध नहीं हैं ।

(१०) आशाधर—ये संस्कृत साहित्य के पारदर्शी विद्वान थे । ये मांडलगढ़ के मूल निवासी थे । मेवाड़ पर मुसलमान बादशाह शहाबुद्दीन गौरी के आक्रमण से त्रस्त होकर मालवा की राजधानी धारा में अपने एवं अपने परिवार की रक्षार्थ अन्य लोगों के साथ आकर बस गए । ये जाति के बघेरवाल थे । पिता सल्लक्षण एवं माता का नाम श्रीरत्नी था । पत्नी सरस्वती से एक पुत्र छाहड़ हुआ । इनका जन्म वि० सं० १२३४-३५ के आस-पास अनुमानित है । नालछा में ३५ वर्ष तक रहे और उसे अपनी साहित्यिक गतिविधियों का केन्द्र बनाया । इनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं—

(१) सागारधर्माभूत—सप्त व्यसनों के अतिचार का वर्णन है । श्रावक की दिनचर्या और साधक की समाधि व्यवस्था आदि का वर्णन इसमें है । (२) प्रमेयरत्नाकर—स्याद्वाद विद्या की प्रतिष्ठापना । (३) भरतेश्वराभ्युदय—महाकाव्य में भरत के ऐश्वर्य का वर्णन है । भरतेश्वराभ्युदय को सिद्धचक्र भी कहते हैं क्योंकि इसके प्रत्येक सर्ग के अन्त में सिद्धि पद आया है । (४) ज्ञान दीपिका । (५) राजमति विप्रलम्भ—खण्ड काव्य है । (६) अध्यात्म रहस्य—योग ग्रन्थ है । (७) मूलाराधना टीका । (८) इष्टोपदेश टीका । (९) भूपाल चतुर्विंशतिका टीका । (१०) क्रियाकलाप । (११) आराधनासार टीका । (१२) अमरकोश टीका । (१३) काव्यालंकार टीका । (१४) सहस्रनाम स्तवन टीका । (१५) जिनयज्ञकल्प-सटीक इसका दूसरा नाम प्रतिष्ठासारोद्धार धर्माभूत का एक अंग है । (१६) त्रिषष्टि स्मृतिशास्त्र सटीक (१७) नित्यमहोद्योत अभिषेक पाठ—स्नान शास्त्र । (१८) रत्नत्रय विधान (१९) अष्टाङ्ग हृदयी द्योतिनी टीका—वग्भट के आयुर्वेद ग्रन्थ अष्टाङ्ग हृदयी की टीका । (२०) धर्माभूत मूल और (२१) भव्यकुमुदचन्द्रिका—धर्माभूत पर लिखी गई टीका ।

(११) श्रीचन्द्र—श्रीचन्द्र धारा के निवासी थे । लाड़ बागड़ संघ के आचार्य थे । इनके ग्रंथ इस प्रकार हैं :—(१) रविषेण कृत पद्मचरित पर टिप्पण (२) पुराणसार (३) पुष्पदंत के महापुराण पर टिप्पण (उत्तरपुराण पर टिप्पण) (४) शिवकोटि की भगवती आराधना पर टिप्पण । पुराणसार वि० सं० १०८० में, पद्मचरित की टीका वि० सं० १०८७ में, उत्तरपुराण का टिप्पण वि० सं० १०८० में राजा भोज के राज्यकाल में रचा । टीका प्रशस्तियों में श्रीचन्द्र ने सागरसेन और प्रवचनसेन नामक दो सैद्धांतिक विद्वानों का उल्लेख किया है । ये दोनों धारा निवासी थे । इससे स्पष्ट

विदित होता है कि उस समय धारा में अनेक जैन विद्वान् और आचार्य निवास करते थे। इनके गुरु का नाम श्रीनन्दी था।

(१२) कवि धनपाल—ये मूलतः ब्राह्मण थे। लघुभ्राता से जैनधर्म की दीक्षा ली। पिता का नाम सर्वदेव था। वाक्पतिराज मुंज की विद्वत्सभा के रत्न थे। मुंज द्वारा इन्हें 'सारस्वती' की उपाधि दी गई थी। संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं पर इनका समान अधिकार था। मुंज के सभासद होने से इनका समय ११वीं सदी निश्चित है। इन्होंने अनेक ग्रंथ लिखे, जो इस प्रकार हैं—(१) पाइलच्छी नाममाला—प्राकृत कोश (२) तिलक मञ्जरी—संस्कृत गद्य काव्य (३) अपने छोटे भाई शोभन मुनि कृत स्तोत्र ग्रंथ पर एक संस्कृत टीका। (४) ऋषभपंचाशिका—प्राकृत (५) महावीर स्तुति (६) सत्यपुरीय (७) महावीर उत्साह—अपभ्रंश और (८) वीरथुई।

(१३) कवि दामोदर—वि० सं० १२८७ में ये गुर्जर देश से मालवा में आये और मालवा के सल्लखणपुर को देखकर संतुष्ट हो गये। ये मेडेत्तम वंश के थे। पिता का नाम कवि माल्लूण था, जिसने दल्ह का चरित्र बनाया था। कवि के ज्येष्ठ भ्राता का नाम जिनदेव था। कवि दामोदर ने सल्लखणपुर में रहते हुए पृथ्वीधर के पुत्र रामचन्द्र के उपदेश एवं आदेश से तथा मल्ह के पुत्र नागदेव के अनुरोध से नेमिनाथ चरित्र वि० सं० १२८७ में परमार वंशीय राजा देवपाल के राज्य में बनाकर समाप्त किया।

(१४) मेरुतुंगाचार्य—इन्होंने अपना प्रसिद्ध ऐतिहासिक सामग्री से परिपूर्ण ग्रंथ "प्रबन्ध चिन्तामणि" विक्रम सं० १३६१ में लिखा। इसमें पाँच सर्ग हैं। इसके अतिरिक्त विचार श्रेणी, स्थविरावली और महापुरुष चरित या उपदेश शती जिसमें ऋषभदेव, शांतिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और वर्धमान तीर्थंकरों के विषय में जानकारी है, की रचना की।

परमार काल में जैनधर्म तथा सारस्वतों के दृष्टिकोण से डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन^१ का कथन है कि मुंज के सम्बन्ध में प्रबन्ध चिन्तामणि आदि जैन ग्रंथों में अनेक कथाएँ मिलती हैं। नवसाहसांकचरित के लेखक पद्मगुप्त, दशरूपक के लेखक धनञ्जय, उसके भाई धनिक, जैन कवि धनपाल आदि अनेक कवियों का वह आश्रयदाता था। जैनाचार्य महासेन और अमितगति का यह राजा बहुत सम्मान करता था। इन जैनाचार्यों ने उसके काल में अनेक ग्रंथों की रचना की। मुंज स्वयं जैनी था या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता किन्तु वह जैनधर्म का प्रबल पोषक था, इसमें सन्देह नहीं है। उसका उत्तराधिकारी और भाई सिधुल या सिधुराज कुमार नारायण नवसाहसांक (९६६-१००६ ई०) भी जैनधर्म का पोषक था। प्रद्युम्न चरित के कर्ता मुनि महासेन का गुरुवत् पोषक था। अभिनव कालिदास, कवि परिमल का नवसाहसांकचरित्र इसी राजा की प्रशंसा में लिखा गया है।

१ भारतीय इतिहास : एक दृष्टि, पृष्ठ १६७ से १६९

मुंज का भतीजा और सिन्धुल का पुत्र भोज (१०१०-१०५३ ई० तक) भारतीय लोक कथाओं में प्राचीन विक्रमादित्य की भाँति ही प्रसिद्ध है। भोज भी जैनधर्म का पोषक था। उसके समय में धारा नगरी दिग्म्बर जैनधर्म का प्रमुख केन्द्र थी और राजा भोज जैन विद्वानों और मुनियों का बड़ा आदर करता था। सरस्वती विद्या मन्दिर के नाम से उसने एक विशाल विद्यापीठ की स्थापना की थी। उसने जैन मंदिरों का भी निर्माण करवाया बताया जाता है। ऊपर बताये गये विद्वानों में से अनेक दिग्गज जैनाचार्यों ने उससे सम्मान प्राप्त किया था। आचार्य शांतिसेन ने उसकी राज सभा में अनेक अजैन विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित किया था। भोज का सेनापति कुलचन्द्र भी जैनी था। धनंजय, धनपाल, धनिक आदि गृहस्थ जैन कवियों ने इसके आश्रय में काव्य साधना की थी। भोज के उपरान्त जयसिंह प्रथम (१०५३-६० ई०) राजा हुआ। उसके उत्तराधिकारी निर्बल रहे। उनमें नरवर्मनदेव (११०४-११०७ ई०) महान योद्धा और जैनधर्म का अनुरागी था। उज्जैन के महाकाल मन्दिर में जैनाचार्य रत्नदेव का शैवाचार्य विद्या शिववादी के साथ शास्त्रार्थ उसी समय हुआ। इस राजा ने जैन गुरु समुद्रघोष और श्री वल्लभ सूरि का भी सम्मान किया था। उसके पुत्र यशोवर्मनदेव ने भी जैनधर्म और जैन गुरुओं का आदर किया। जिनचन्द्र नामक एक जैनी को उसने गुजरात प्रान्त का शासक नियुक्त किया था। १२वीं-१३वीं शताब्दी में धारा के परमार नरेश विन्ध्यवर्मा और उसके उत्तराधिकारियों में सुभट वर्मा, अर्जुनवर्मा, देवपाल और जैतुंगदेव ने पं० आशाधर आदि जैन विद्वानों का आदर किया था।

रत्नमण्डनगणिकृत झांझण प्रबन्ध और पृथ्वीधर चरित्र तथा उपदेश तरंगिणी से ज्ञात होता है कि परमार राजा जयसिंहदेव तृतीय (ई० सन् १२६१-८०) के मंत्री पेथड कुमार ने मांडव में ३०० जैन मन्दिरों का जीर्णोद्धार किया और उन पर सोने के कलश चढ़वाये थे। इसी प्रकार अठारह लाख रुपये की लागत का "श्री शत्रुंजयावतार" नाम का विशाल मन्दिर बनवाया था। पेथड के पुत्र झांझण ने बहुत-सी धर्मशालाएँ, पाठशालाएँ, जैनमन्दिर स्थान-स्थान पर बनवाए और एक बहुत विशाल ग्रंथालय स्थापित किया था। ७०० जैन मन्दिरों की संख्या केवल जैन श्वेताम्बरों की थी। चाँदाशा नाम के धनी व्यापारी ने ७२ जिन देवालय और ३६ दीपस्तम्भ मांडव नगर में बनवाये थे। धनकुबेर श्रीमाल भूपाल लघु शांतिचन्द्र जावड़शा ने ऋषभदेव, शांतिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर के सौंघशिखरी पाँच जिन देवालय बनवाए और उनमें एक ग्यारह सेर सोने की तथा दूसरी बाईस सेर चाँदी की और शेष पाषाण की जिन प्रतिमाएँ साधु रत्नसूरि की आज्ञा से स्थापित कराई थीं। इस उत्सव में ११ लाख रुपये व्यय किये। एक लाख रुपये तो केवलमुनि के मांडव नगर प्रवेश के समय व्यय किये थे। इस प्रकार और भी प्रमाण इस बात की पुष्टि करने वाले मिलते हैं कि ई० सन् १३१० यानि मुसलमानों के आने तक परमार राजाओं की राजधानी मांडव एक समृद्ध नगर था, जिसका विध्वंस बाद में मुसलमानी शासन काल में हुआ और

सदियों के बने हुए देवालयों तथा अन्य इमारतों की सामग्री का रूपान्तरित करके यावनी तक्षणकला की तर्ज की मौजूदा आलीशान इमारतें मुसलमानी समय में निर्माण हुईं जिससे हिन्दू राजत्वकाल की एक भी इमारत जमीन के ऊपर अभग्न न रही।^१

मुस्लिमकालीन मालवा में जैनधर्म:—राजपूत काल में जैनधर्म मालवा में अपनी उन्नति के शिखर पर था। राजपूतों के पतन के पश्चात् मालवा मुस्लिम शासकों के अधिकार में आ गया। इस काल में न केवल जैनधर्म अपितु अन्य धर्मों को भी हानि उठानी पड़ी फिर भी जहाँ अनेक मन्दिर और मूर्तियाँ ध्वस्त हुईं वहीं दूसरी ओर इनका निर्माण भी हुआ लेकिन कम संख्या में। जैन मन्दिरों को मस्जिदों के रूप में भी परिवर्तित किया गया। जिसके उदाहरण उज्जैन^२ के बिलोटीपुरा स्थित बिना नींव की मस्जिद एवं आगर की^३ होशंगशाही मस्जिद है। उज्जैन के जैन मन्दिर का परिवर्तन दिलावर खाँ गोरी ने किया था तथा आगर का उसके पुत्र होशंग गोरी ने।

यद्यपि इस युग में मन्दिरों के ध्वंस की जानकारी मिलती है किन्तु इस युग में ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं कि अनेक जैनमतावलम्बी मांडव के सुलतान के यहाँ उच्च पदों पर कार्यरत थे तथा अनेक जैन मतावलम्बियों ने साहित्य को अमूल्य देन दी है। ऐसे ही अधिकारियों, विद्वानों, मुनियों का और उनके द्वारा रचित साहित्य का विवरण इस प्रकार दिया जा सकता है:—

१—**तारण स्वामी**—ये तारणपंथ के प्रवर्तक आचार्य थे। इनका जन्म पुहुपावती नगरी में सन् १४४८ में हुआ था। पिता का नाम गढ़ा साव था। वे दिल्ली के बादशाह बहलोल लोदी के दरबार में किसी पद पर कार्य कर रहे थे। आपकी शिक्षा श्री श्रुतसागर मुनि के पास हुई। आपने कुल १४ ग्रन्थों की रचना की जो इस प्रकार हैं:—(१) श्रावकाचार (२) माला जी (३) पंडित पूजा (४) कलम बत्तीसी (५) न्याय-समुच्चयसार (६) उपदेश शुद्धसार (७) त्रिभंगीसार (८) चौबीस ठाना (९) ममलपाहु (१०) सुन्नस्वभाव (११) सिद्ध स्वभाव (१२) रवात का विशेष (१३) छद्मस्थ वाणी और (१४) नाममाला।

२—**मंत्री मंडन**—मंडन दिलावर खाँ गोरी के पुत्र अमलखान या होशंग गोरी का प्रधानमंत्री था। होशंग गोरी ने ई० सन् १४०५ से १४३२ तक मालवा पर स्वतंत्र शासक के रूप में शासन किया।

मंडन प्रधानमंत्री तो था ही किन्तु इसके अतिरिक्त वह एक उद्भट विद्वान भी था। श्री मोहनलाल दुलीचन्द देसाई ने कवि महेश्वर के 'काव्य मनोहर' नामक ग्रन्थ के आधार पर मंडन के विषय में लिखा है कि व्याकरण में जाग्रत, नाटक एवं अलंकार

१ विक्रम स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ ५६८-६६

२ संस्कृति केन्द्र उज्जयिनी

३ आगर का इतिहास, पृष्ठ ८६

का विशेषज्ञ, संगीत में अतुल प्रवीण, गम्भीर शास्त्र युक्त, चातुर्य की एकमात्र निवास भूमि, अतुल सद्गुणों से उन्नति करने वाला श्रीमालवंश का निर्मल बुद्धि मंडन विराजता है।^१

महेश्वर कवि के काव्य मनोहर के सर्ग १ और २ में मंडन के विषय में लिखा है कि मंडन ज्ञाज्ञण संघवी के दूसरे पुत्र बाहड़ का छोटा पुत्र था। वह व्याकरण, अलंकार, संगीत, तथा अन्य शास्त्रों का महान विद्वान था। विद्वान व्यक्तियों पर इसका बड़ा प्रेम था। इसके यहाँ विद्वानों की सभा लगी रहती थी, जिसमें उत्तम कवि अच्छे काव्यों की, प्रबन्धों की और प्राकृत भाषा के कवियों की उदार कथाओं की स्तुति करते थे और नैयायिक, वैशेषिक, भाट्ट, वेदान्ती, सांख्य, प्रभाकर, बौद्धमत के महान विद्वान उपस्थित रहकर इसकी प्रशंसा करते थे। गणित, भूगोल, शकुन, प्रश्न भेद, मुहूर्त और वृहत जातक में निष्णात, देश ऋतुकाल, प्रकृति रोग, ब्रण चिकित्सा आदि के लक्षणों के ज्ञाता, असाध्यसाध्यादि रसक्रिया में निपुण वैद्य, साहित्यविद्, नायक नायिका भेद को जानने वाले इसकी सभा में उपस्थित रहते थे। उत्तम-उत्तम गायिकाएँ, गायक आदि इसके यहाँ आते रहते थे और इसकी संगीत शास्त्र की अद्वितीय योग्यता को देखकर अवाक् रह जाते थे। यह सबको भूमि, वस्त्र, आभूषण, घन आदि दान में देता था। याचकों को भी यह दान करता था।^२

मंडन के ग्रंथ शृंगारमंडन और सारस्वतमंडन के आधार पर डा० पी० के० गौडे^३ ने निम्नांकित जानकारी मंडन के विषय में प्रकाशित की है:—

शृंगार मंडन—इसमें कुल १०८ श्लोक हैं जो शृंगार रस से सम्बन्धित हैं।

(१) श्लोक क्रमांक १०२ मालवा के शासक से सम्बन्धित है जिसकी राजधानी मण्डप दुर्ग या मांडू थी।

(२) उपर्युक्त मालवा की राजधानी का शासक आलमसाहि था।

(श्लोक क्रमांक १०३)

(३) आलमसाहि ने गुजरात तथा दक्षिण की लड़ाइयों में विजय प्राप्त की थी।

(श्लोक क्रमांक १०४)

(४) ज्ञाज्ञण (मंडन का पितामह) श्रीमालवंश का था। यह सोन गिरान्वय का मंत्री कहलाता था जैसा कि काव्यमंडन के श्लोक क्रमांक ५५ में बताया गया है। इसके छः पुत्र थे जिनके नाम काव्यमंडन में बताये गये हैं।

(श्लोक क्रमांक १०५)

(५) इन पुत्रों में बाहड़ एक प्रतिष्ठित व्यक्ति था।

(श्लोक क्रमांक १०६)

१ जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ ४७६

२ वही, पृष्ठ ४८२

३ The Jain Antiquary, Vols. IX, No. II of 1943, XI No. 2 of 1946.

(६) बाहड़ के पुत्र मंडन ने “सारस्वत मंडन” और “काव्यमंडन” की रचना की। (श्लोक क्र० १०७)

(७) मंडन ने इस शृंगार विषयक शतश्लोकी ग्रन्थ की रचना की। (श्लोक क्र० १०८)

(८) शृंगार मंडन की पांडुलिपि सं० १५०४ (ई० सन् १४४८) के कार्तिक माह में काव्य मंडन की प्रतिलिपि, जो कि भाद्रपद में की गई थी, के बाद की गई है।

(९) काव्य मंडन और सारस्वत मंडन की रचना शृंगार मंडन के पूर्व की गई।

सारस्वत मंडन—इस ग्रन्थ में मंडन के वंश, गच्छ तथा पिता के नाम के अतिरिक्त और भी जानकारी मिलती है—

(१) मंडन जैन था। उसका सम्बन्ध सोनगिर खरतर गच्छ से था। वह संघपति भी था। उसको सर्वविद्याविशारद कहा गया है—जो कि उसके ग्रन्थ काव्य मंडन, शृंगार मंडन, सारस्वत मंडन और संगीत मंडन से प्रमाणित होता है।

(२) वह मांडू के शासक आलम या अल्म का प्रधानमंत्री था। सारस्वत मंडन में निश्चित रूप से कहा गया है कि वह आलमसाहि का महाप्रधान था। यह विवरण प्रदर्शित करता है कि जब सारस्वत मंडन की रचना की गई तब वह मालवा के आलमसाहि का प्रधानमंत्री था। सम्भवतः इसी समय उसने काव्य मंडन की रचना की, क्योंकि शृंगार मंडन में दोनों ग्रन्थों का संदर्भ है।

(३) उसके पिता भी उसी की तरह संघेश्वर या संघपति थे।

(४) मंडन के पिता का पद्म नामक भाई था। पद्म को भी अमात्य कहा गया है।

डाक्टर गौडे ने आलमसाहि की पहिचान दिलावर खाँ के पुत्र होशंग गौरी से की है।

काव्य मंडन ग्रंथ के आधार पर डाक्टर गौडे मंडन के विषय में निम्नांकित जानकारी और देते हैं—

(१) मंडन ने अपने ग्रंथ ‘काव्य मंडन’ के प्रथम सर्ग के प्रारम्भ में ‘वीतराग परेश’ और अन्त में ‘जिनेन्द्र’ का सन्दर्भ दिया है जिससे विदित होता है कि काव्य मंडन का लेखक जैन था।

(२) मंडन ‘महाजिन’ का अनुयायी था।

(३) जब मांडवगढ़ में आलमसाहि नामक राजा राज्य कर रहा था, उस समय ‘काव्य मंडन’ ग्रन्थ की रचना की गई।

मंडन द्वारा रचित ग्रन्थों का विवरण इस प्रकार है—

(१) **काव्य मंडन**—इसमें पांडवों की कथा का वर्णन है।

(२) शृंगार मंडन—यह शृंगार रस का ग्रन्थ है, इसमें १०८ श्लोक हैं।

(३) सारस्वत मंडन—यह सारस्वत व्याकरण पर लिखा गया ग्रन्थ है। इसमें ३५०० श्लोक हैं।

(४) कादम्बरी मंडन—यह कादम्बरी का संक्षिप्तिकरण है, जो सुलतान को सुनाया गया था। इस ग्रन्थ की रचना सं० १५०४ में हुई थी।

(५) चम्पू मंडन—यह ग्रन्थ पांडव और द्रौपदी के कथानक पर आधारित जैन संस्करण है। रचना तिथि सं० १५०४ है।

(६) चन्द्रविजय प्रबन्ध—ग्रन्थ की रचना तिथि सं० १५०४ है। इसमें चन्द्रमा की कलाएँ, सूर्य के साथ युद्ध और चन्द्रमा की विजय का वर्णन है।

(७) अलंकार मंडन—यह साहित्य शास्त्र का पांच परिच्छेद में लिखित ग्रन्थ है। काव्य के लक्षण, भेद और रीति, काव्य के दोष और गुण, रस और अलंकार आदि का इसमें वर्णन है। इसकी भी रचना तिथि सं० १५०४ है।

(८) उपसर्ग मंडन—यह व्याकरण रचना पर लिखित ग्रन्थ है।

(९) संगीत मंडन—यह संगीत से सम्बन्धित ग्रन्थ है।

(१०) कविकल्पद्रुमस्कंध—इस ग्रन्थ का उल्लेख मंडन के नाम से लिखे ग्रन्थ के रूप में पाया जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मंडन न केवल एक प्रधानमंत्री था वरन् वह चहुँमुखी प्रतिभा का धनी भी था। मंडन पर स्वतंत्र रूप से शोध कर इस प्रतिभाशाली विद्वान मंत्री के साहित्य को प्रकाश में लाने की आवश्यकता है।

३—धनदराज—यह मंडन का चचेरा भाई था। इसने शतकत्रय (नीति, शृंगार और वैराग्य) की रचना की। नीतिशतक की प्रशस्ति से विदित होता है कि ये ग्रन्थ उसने मंडपदुर्ग में सं० १४९० में लिखे।

४—भट्टारक श्रुतकीर्ति—ये नन्दी संघ और सरस्वती गच्छ के विद्वान थे। त्रिभुवनकीर्ति के शिष्य थे। अपभ्रंश भाषा के विद्वान थे। आपकी उपलब्ध सभी रचनायें अपभ्रंश भाषा के पद्धिडिया छन्द में रची गई हैं। आपकी चार रचनाएँ उपलब्ध हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है—

(१) हरिवंशपुराण—जेरहट नगर के नेमिनाथ चैत्यालय में वि० सं० १५५२ माघ कृष्णा पंचमी सोमवार के दिन हस्त नक्षत्र के समय पूर्ण किया।

(२) धर्मपरीक्षा—इस ग्रन्थ को भी वि० सं० १५५२ में बनाया क्योंकि इसके रचे जाने का उल्लेख आपने दूसरे ग्रन्थ परमेष्ठिप्रकाशसार में किया है।

(३) परमेष्ठिप्रकाशसार—इसकी रचना वि० सं० १५५३ की श्रावण गुरु पंचमी के दिन मांडव के दुर्ग और जेरहट नगर के नेमिश्वर जिनालय में हुई।

(४) योगसार—यह ग्रंथ वि० सं० १५५२ मंगसिर माह के शुक्ल-पक्ष में रचा गया। इसमें गृहस्थोपयोगी सैद्धांतिक बातों पर प्रकाश डाला गया है। साथ में कुछ मुनिचर्या आदि का भी उल्लेख किया गया है।

५—संग्रामसिंह सोनी—यह मालवा के सुलतान महमूद खिलजी के समय में खजांची के पद पर कार्यरत था। संग्रामसिंह सोनी श्वेताम्बर मतानुयायी जैन (ओसवाल) था। महमूद खिलजी के द्वारा राणा कुम्भा और दक्षिण के निजाम के साथ लड़े गये युद्धों में संग्रामसिंह सोनी ने मदद की और कीर्ति अर्जित की। संग्रामसिंह सोनी केवल राजनीतिक व्यक्ति ही नहीं था, वरन् वह एक विद्वान भी था। इसने बुद्धिसागर नामक ग्रंथ की रचना भी की थी। इसने एक हजार स्वर्ण मुद्राएँ व्यय करके अलग-अलग स्थानों पर ज्ञान भण्डारों की स्थापना की थी। इसको बादशाह ने “नक्द-उल-मुल्क” की उपाधि दी थी। यह वही संग्रामसिंह सोनी है जिसने मक्सी पार्श्वनाथ तीर्थ के मन्दिर का निर्माण करवाया था।

इस समय के अन्य उल्लेखनीय जैन राज्याधिकारियों में मंडन के वंश का मेघ गयासुद्दीन खिलजी का मंत्री था। जिसे “फक्र-उल-मुल्क” की उपाधि प्राप्त थी। इसका भतीजा पुंजराज भी उच्च पद पर था। यह हिन्दुआ राय वजीर कहलाता था और बड़ा विद्वान था। सन् १५०० में उसने “सारस्वत प्रक्रिया” नामक व्याकरण की रचना की थी और उसकी प्रेरणा पर ईश्वर सूरि ने “ललितांग चरित” की रचना की थी। जीवणशाह, गोपाल आदि का नाम भी उल्लेखनीय है।

मांडवगढ़ में एक लाख जैन घरों की आवादी थी जिसमें सात लाख जैनी निवास करते थे। ऐसी किंवदन्ती है कि यहाँ जब भी कोई नया जैनधर्मावलम्बी रहने आता तो उसको प्रत्येक घर से एक स्वर्णमुद्रा एवं एक ईंट दी जाती थी जिससे रहने के लिये मकान बन जाता था और आने वाला लखपति बन जाता था। इसी से मांडव की सम्पन्नता का अनुमान लगाया जा सकता है।



विशेष—मालवा में जैनधर्म के वैभव की झांकी यहाँ केवल सार रूप में ही प्रस्तुत की गई है। जैनकला को तो लगभग इस लेख में छोड़ ही दिया है। मालवा की जैन कला और जैन साहित्य तथा मालवा के जैनाचार्य पर तो स्वतंत्र रूप से शोध करने की आवश्यकता है। जैनाचार्यों पर यदि स्वतंत्र रूप से कार्य किया जाता है तो जैन साहित्य और अनेक जैनाचार्यों के लुप्त इतिहास का प्रकटीकरण सम्भव है। —संपादक